ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-10* November- 2020
Innovation The Research Concept

वैदिक साहित्य और नारी की स्थिति

Vedic Literature and The Status of Women

Paper Submission: 15/11/2020, Date of Acceptance: 25/11/2020, Date of Publication: 26/11/2020

नीलम सारस्वत
सह आचार्य,
अर्थशास्त्र विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर,
राजस्थान, भारत

सारांश

इक्कीसवीं सदी में कदम रख चुका भारतीय समाज दहेज–प्रथा, बालिका भ्रूण हत्या तथा उस वधू के दहन द्वारा कलंकित है, जिसे श्वसुर, सास, देवर व अन्य द्वारा साम्राज्ञी के रूप में स्वीकार कर घर में प्रविष्ट कराते हुये अथर्ववेद (14.4.43) में कहा गया है–

त्वं सम्राज्ञयोधि पत्युश्स्तं परेत्य ।

इसी प्रकार, जब वह पितागृह से, वधू बनकर, पतिगृह को प्रस्थान करती है, तब उसे माता–पिता द्वारा यह आशीर्वाद दिया गया है– 'तुम श्वसुर, सास, ननद और देवरों की साम्राज्ञी बनकर सब पर आधिपत्य करो' ।

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।।

(अथर्ववेद, 14.1.4)

वैदिक साहित्य के अवलोकन से प्रतीत होता है कि समाज में पितृ–प्रधान व्यवस्था के बावजूद महिलाओं की सम्मानजनक व उन्नत स्थिति थी। वैदिक समाज के निर्माण और उत्थान में उनका समान योगदान था। उनके महत्व तथा गौरव का गुणगान दिखाई देता है। महिलाओं को शिक्षा, धर्म, विवाह व अन्य सामाजिक कार्य तथा राजनीति की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। परन्तु उत्तर वैदिक काल के बाद आने वाले युगों में शनैः शनैः स्त्री की यह स्वतन्त्रता विभिन्न प्रभावों के कारण छिनती गई और उन्हें परतन्त्र, निःसहाय और निर्बल मान लिया गया।

In twenty-first century, Indian society has been stigmatized by dowry, female feticide and the burning of the bride, who has been accepted and entering the house with the blessings of father-in-law, mother-in-law, brother-in-law and others as stated in Atharvaveda (14.4.43)-

त्वं सम्राज्ञ
योधि पत्युश्स्तं परेत्य।

Similarly, when she departs from the father's home as bridegroom, to the husband's house, she has been blessed by her parents as-

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।।

(Atharvaveda, 14.1.4)

From the observation of Vedic literature, it appears that despite the patriarchal system in the society, women had a respectable and advanced status. She had equal contribution in building and uplifting Vedic society. The praise of her importance and pride is visible. Women had freedom of education, religion, marriage and other social work and politics. But in the post-vedic period, this freedom of women was shattered due to various influences and they were considered as restless, helpless and weak.

मुख्य शब्द : वैदिक साहित्य, नारी की स्थिति, सशक्तिकरण ।
Vedic Literature, The Status of Women, Empowerment.

प्रस्तावना

वैदिककालीन समाज के जीवन –दर्शन की ऐसी क्या विशेषताएँ थी जिन्होनें स्त्री को वह उच्च स्थान दिलाया, जिससे वैदिक युग भारतीय महिलाओं के लिए स्वर्णिम युग कहा जाता है ? वैदिक काल के बाद स्त्रियों की स्थिति में ह्रास के क्या कारण दृष्टिगोचर होते है ? स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के भारत में महिलाओं को वैदिक युग से भी व्यापक अधिकार प्राप्त है, फिर भी

महिलाओं पर अत्याचार व उत्पीडन चरम पर है तथा उनका सशक्तिकरण एक चुनौती बना हुआ है। वैदिक व्यवस्था से हम क्या सीख ले सकते है जिससे, प्रथम महिलाओं को अपना खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त हो सके, तथा द्वितीय, वह कमियों न रहे जिनके कारण महिलाओं की वैदिक काल की उन्नत स्थिति में गिरावट आई ?

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध–पत्र में संस्कृत साहित्य के आधार पर उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया गया है। इस हेतु वेदों, स्मृतियों, पुराणों, महाकाव्यों से सम्बन्धित साहित्य का उपयोग किया गया है तथा शोध पत्र को तीन भागों में विभाजित किया गया है। भाग प्रथम में वैदिक समाज में महिलाओं के प्रति मानसिकता के उस उज्जवल पक्ष पर प्रकाश डाला गया है जो उनकी समाज में पुरूषों से समानता या श्रेष्टता भी दिखाता है। भाग द्वितीय में उन कमियो की पडताल की गई है जिनके कारण यह सशक्त स्थिति मानव जाति के पूरे इतिहास की तुलना में क्षणभंगुर साबित हुई तथा अंततः इसकी परिणति स्त्रियों की दयनीय दशा के रूप में सामने आई है। भाग तृतीय में पत्र के प्रमुख निष्कर्ष व वर्तमान स्थिति के संदर्भ में सुझाव दिये गये है।

वैदिक काल में नारी–सशक्तता के कारक

वैदिक विद्या–बुद्धि व्यवस्था आदि क्षेत्रों में तथा समाज के उत्थान में नारियों का महत्वपूर्ण योगदान जिन प्रमुख कारकों के कारण संभव हो पाया,वे निम्नलिखित है–

नर–नारी एकत्व की धारणा

वैदिक जीवन दर्शन नर व नारी की समानता से भी आगे की अवधारणा पर आधारित है। वस्तुतः वह दोनों में कोई भेद ही नहीं करता। वैदिक मान्यताओं के अनुसार आरम्भ में एकांकी प्रजापति ने सृष्टि रचना की कामना से प्रेरित होकर स्वयं को दो भागो में विभक्त किया। उनका एक भाग नर तथा दूसरा नारी के रूप में प्रकट हुआ।

द्विधा कृत्वात्मनों देहमर्धेन पुरूषोऽभवत्!
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत प्रभुः।।

प्रजापति द्वारा द्विधा विभक्त स्वरूप की परिणति ' अर्धनारीश्वर' रूप में है। प्रकृति पुरूष, सोम–अग्नि, माता–पिता आदि सबके एकत्व भाव का अधिष्ठान अर्धनारीश्वर रूप में है। इस आधार पर सृष्टि के प्रत्येक नर के भीतर नारीत्व और प्रत्येक नारी के भीतर नरत्व की सत्ता विद्यमान है।

ऋग्वेद के ' अस्यामावीय सूत्र' में यहॉ तक कहा गया है कि जिन्हें नर कहते है, वे वस्तुतः नारियॉ। है। यह तर्क संगत भी है क्योकि नर की निर्मात्री (माँ) भी नारी ही होती हैं। उसी की मॉस–मज्जा से वह बना है। नर व पुरूष शब्दों में भेद किया गया है। ऋग्वेद के 'पुरूष सूक्त' के अनुसार ' पुरूष' जीवित प्राणियों का अमृत स्वरूप है। अर्थात् सम्पूर्ण जगत का सृजन करने वाला व सम्पूर्ण जगत का आधार है–

पुरति अग्रे गच्छति।

अतः प्रत्येक नर व नारी में अमृत स्वरूप पुरूष अवस्थित होने के कारण दोनों का एक ही होना तथा ' पुरूष' व नारी का एक ही होना पूर्णतया तर्कसंगत प्रतीत होता है।

इस प्रकार के ज्ञान पर आधारित समाज में नर के अहंकार का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः नारियों को नर के समान सम्मान प्राप्त न होने का कोई कारण ही नहीं था। यह तो कालांतर में जब नर केवल अपने आप को ही ' पुरूष ' समझ बैठा, न कि नारी की तरह 'अर्धनारीश्वर' की संतान, तब वह अहंकारी हो गया।

मैत्रायणी संहिता (4.7.1) ने तो नारियों को नर से भी बढकर माना है–

स्त्रियः पुंसोऽति रिच्यते

यह नारी सशक्तिकरण की चरम सीमा है।

मातृत्वशक्ति का सम्मान

नारी की मातृत्वशक्ति की विशिष्टता के कारण प्राचीन साहित्य में उसके आद्याशक्ति स्वरूप के साथ–साथ मानवीय स्वरूप को भी प्रमुखता व सम्मान दिये गये है। पृथ्वी से माता की उपमा दी गई है–

माता पृथिव्या मूर्तिस्तु।

सन्तानों द्वारा आदर प्राप्त करने वालों में माता का नाम पिता से पहले आता है–

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।
आचार्य देवोभव। अतिथिदेवो भव।।

वंश परम्परा मातृत्व के आधार पर बनती थी। आधुनिक जीव वैज्ञानिक विश्लेषण ने भी पाया है कि माता ही पीढी–दर–पीढी वंशानुगतता की संवाहक होती है।

कन्या की परिवार में स्थिति

वैदिक युग में कन्या पिता के लिए उत्तम कल्याण देने वाली समझी जाती थी। बालिकाओं को बालकों के समान शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। शिक्षित व व्यस्क हो जाने पर ही माता–पिता उसके विवाह की सोचते थे। नवयुवक व नवयुवतियॉ दोनों ही परस्पर पति–पत्नी का चुनाव करने के लिए स्वतंत्र थे। वे परस्पर सहमति से विवाह करते थे, माता–पिता का कर्तव्य केवल उनके विवाह की व्यवस्था करना होता था। शिक्षा व गुण ही चुनाव के आधार थे। इसलिए बाल–विवाह, दहेज, जाति जैसी समस्याऍ पूर्णतया अनुपस्थित थी। बालिकाऍ विवाह के लिए माता–पिता पर आश्रित या बोझ नहीं समझी जाती थी।

गृहणी की स्थिति

वैदिक साहित्य में गृहसूत्र तथा धर्मसूत्र, दोनों में ही विवाह संस्कार को सभी संस्कारों में अधिक प्राधान्य दिया गया है।

पिता या ज्येष्ठ पुत्र, जो कुटुम्ब का कर्ता हुआ करता था, ' कुलय' कहा जाता था। (ऋग्वेद 10.17.2)। 'कुलय' सोचता था कि परिवार के सभी लोग प्रेमभाव से रहे और दूसरे के प्रति प्रेम का बर्ताव करें। (अथर्ववेद, 19. 62.1)। कुटुम्ब के कर्ता के कर्तव्य–अकर्तव्यों का भी विवचेन गृहसूत्रकारों ने किया है, जो वर्तमान तक प्रासंगिक व उपादेय है।

ऋग्वेद (10.85.47) में पति–पत्नी द्वारा कहा गया है कि विश्व की समस्त शक्तियॉ एवं विद्वान हम दोनों को पति–पत्नी जाने, हम दोनों के हृदय जल के समान स्वच्छ हो, दोनों की प्राणशक्ति, धारणाशक्ति और उपदेशग्रहण

शक्ति परस्पर कल्याणकारी हो। अतः नर–नारी दोनों का समबन्ध एकरूपता पर आधारित, बडा ही आदर्श व पावन प्रतीत होता है। इसलिए नारी उत्पीडन या तलाक जैसी समस्याएं नितांत अस्तित्वहीन थी।

पत्नी को गृहस्वामिनी, परिवार की विधातृ माना जाता था। ऋग्वेद(3.53.4) में 'स्त्री का ही अपर नाम घर' कहा गया है। पत्नी के तीन मुख्य कर्तव्य बताये गये है–

1. मधुरभाषण, सत्यवादित और दूसरों को भी वैसा करने के लिए प्रेरित करना।
2. अपने पति तथा अन्य लोगों को उत्तम सलाह देना।
3. यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना।

इनका अवलोकन कर कहा जा सकता है कि वैदिक युग में नारी पति व अन्य लोगों को प्रेरणा व उत्तम ज्ञान देनेवाली विदुषी मानी जाती थी, सम्मानित थी, न की पति की दासी। महिलाओं को अपनी प्रतिभा दिखाने व समाज के विकास में अपना योगदान देने के पूरे अवसर प्राप्त थे।

आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता

ऋग्वेद (9.112.1–3) के निम्न संदर्भ से ज्ञात होता है कि आजीविका के लिए महिलाएँ भी परिवार में योगदान देती थी– ' मैं एक गायक हूँ। मेरा बाप वैद्य है। मेरी मां अन्न कूटती है या चक्की चलाती है। जिस प्रकार चरवाहे गायों के पीछे दौडते है, हम लोग उसी प्रकार धन के पीछे दौड रहे है।

क्रीडा–कौतुकों, धर्म, राजनीति आदि में भाग लेने की स्वतन्त्रताः–

ऐसा कोई भी सार्वजनिक, धार्मिक तथा सामूहिक कार्य नहीं था, जिसमें नारियॉ भाग ना लेती हो। यथा अवसर, वे सभाओं में भाषण आदि भी देती थी।

वीरता

अथर्ववेद (20.26.9) में नारी को वीर, वीरपुत्रों की जननी माना है। और उसे अबला समझने वाले को दुर्जन माना है। इसमें (1.27.3) इन्द्राणी की सेना के बारें में लिखा गया है कि उसके सामने बडे–बडे शत्रु भी नहीं ठहर सकते थे।

नैतिकता आधारित समाज

वैदिक समाज मे नैतिकता मानव जीवन का आधार था। सामाजिक, अर्थिक व राजनैतिक जीवन में नैतिकतापूर्ण आचरण कैसा हो, यह वैदिक साहित्य में विस्तार से वर्णित है। स्त्रियों के शील व सम्मान की रक्षा करना एक महान कर्तव्य माना जाता था। उनका अनादर, शोषण व उन पर हिंसा का प्रयोग अधर्म माना जाता था।

उपर्युक्त सभी बिन्दुओं का वर्तमान जीवन–दर्शन में उतना ही महत्व है जितना प्राचीन काल में था। यदि हम इन्हें व्यवहार में अपना ले तो नारियॉ सशक्त बनेगी तथा देश की आधी मानव पूँजी जिसको अपना पूरा योगदान देने के अवसर प्राप्त नहीं है, अपना पूर्ण योगदान देकर, देश व समाज को सशक्त कर सकेगी।

नारी की स्थिति में ह्रास के कारण

वैदिक काल के बाद वाले युगों में रूढियों का प्रभुत्व होता गया जिससे स्त्रियों की स्वतन्त्रता छिनती गई। और उनकी स्थिति घर की चारदीवारी में सीमित भोग की वस्तु व दासी की हो गई। समाज के विकास के साथ ऐसे कारणेा का भी विकास होता गया जो स्त्रियों की परतन्त्रता व हीनदषा के लिए उत्तदायी ठहराये जा सकते है। इनका निम्नलिखित प्रमुख वर्गो के अन्तर्गत विवेचन किया गया है–

नर–नारी की एकत्व की धारणा का समझने में कठिन होना

ऋग्वेद के 'पुरूष सूक्त' में नर व नारी के एकत्व की व्याख्याता करते हुये कहा गया है कि जिन्हें नर कहते है वे वस्तुतः नारियॅा है। इस रहस्य को जिसकी ऑखे है वहीं देख सकता है। अंन्धा इसे नहीं देख पाता (स्त्रियः सतीस्तां उभें पुंस आहु पश्यदक्षण्वान्न विचेतदाधः)। वास्तव में सामान्यजन को नर व नारी शारीरिक रूप से भिन्न भिन्न ही दिखाई देते है। इनके स्वभाव में कार्यक्षमता भिन्न दिखाई देती है तथा उनके एकत्व को देख पाने के लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता है। इसलिए आने वाले समय में नारी को पृथक मानकर उसके लिए पृथक कर्मो के सम्पादन का निर्णय कर दिया गया। मातृत्व,पत्नित्व आदि तक उसके कार्यो को सीमित कर दिया गया और यही नारी की श्रेष्ठता के सूचक बताये गये। नारी भी इसके लिए सहमत हो गई।

मातृत्व शक्ति के सम्मान में कमी

धीरे–धीरे मातृत्व को स्त्री की विशिष्ट शक्ति मानकर उसका सम्मान करने के स्थान पर रूढिवादियों द्वारा इसे नारी का दायित्व माना जाने लगा। उत्तराधिकार पितृत्व पर ही आधारित हो गया। उसमे मातृत्व अंश को कोई अस्स्तिव देखने को नहीं मिलता। पुत्र पिता की सम्पति के उत्तराधिकारी माने गये। तैतिरीय संहिता (3.19.4) व ऐतरेय ब्राह्मण (5.1.4) इसकी पृष्टि करते है। अतः वृद्धावस्था में माता को पुत्र पर आश्रित बताया गया है। हालांकि पुत्र का धर्म भी माता–पिता की सेवा करना बताया गया है। परन्तु पराश्रितता के कारण माता का सम्मान धीरे–धीरे पिता के अपेक्षा कम होता गया।

पुरूष प्रधानता

ऋग्वेद में जहॉ जीवित प्राणियें के अमृत स्वरूप के अर्थ में पुरूष शब्द प्रयुक्त किया गया है तथा इसकी उत्पति ' पूः पुरं शरीरं च, पुरिषैते इति पुरूष' अर्थात शरीर में अव्यवस्थित वह चैतन्यांश पुरूष है, जो इस पुर में प्रविष्ठ हो, बताई गई है, धीरे–धीरे इसका प्रयोग मानव के अर्थ में होने लगा। (बृहदारण्यक उपनिषद व महाभारत) और अंततः नर के समानार्थक रूप में हो गया, जैसा वर्तमान में हिन्दी में प्रचलित है। पुरूष–प्रधानता से तात्पर्य यहॉ नर की प्रधानता से है। पत्नी को पति के अधीन होते हुये कुटुम्ब की अधिकारिणी बताया गया है , जो अपने आप में विरोधभासी प्रतीत होता है। दरअसल अथर्ववेद ने दाम्पत्य जीवन की व्यवस्था को बनाये रखने का दायित्व नारी पर डाला है। इसलिऐ उसे पति से टकराहट होने पर पति के अनुकूल आचरण करने (3.25.4) और विरोध न करने का निर्देश (2.36.4) दिया गया है। कालान्तर में इस आधार पर पति का स्थान स्वामी का व पत्नी का दासी का होता गया। पुरूषों ने पत्नीव्रत को भुला दिया तथा सिर्फ पतिव्रत की अपेक्षा रखी। स्वयं को स्त्री से बेहतर माना और पत्नी का उन्हें सलाह देने का अधिकार छीन लिया। 19 मई 2009 को सुप्रीम कोर्ट की बैंच ने पतियों

को सुखद गृहस्थी के लिए, पत्नियों की बात सुनने की सलाह दी है।

नर- केन्द्रित व्यवस्थाएँ

पुरूषार्थ चतुष्टय

वैसे तो वैदिक साहित्य में सभी मनुष्यों, नर व नारी के जीवन के चार लक्ष्य या पुरूषार्थ बताये गये है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, परन्तु धीरे–धीरे इसको नर–केन्द्रित कर दिया गया। नर के अंदर पुरूष जगाना पुरूषार्थ का कार्य माना जाने लगा। पत्नी को त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) में सहभागिनी व मोक्ष देने वाली कहा गया है। पत्नी के स्वयं के लिए पुरूषार्थ का लक्ष्य गौण कर दिया गया। इसकी स्थिति पति के लिए पुरूषार्थ –रूपी साध्य को प्राप्त करने के साधन की तरह रह गई। मानव को 'अमृतस्य पुत्र' कहा गया है। यह भी नर को केन्द्र में रखकर उसी के लिए अमृत स्वरूप की कामना प्रतीत होती है।

आश्रम–धर्म व्यवस्था

धर्माचार्यो और ऋषियों द्वारा मर्यादा और सदाचार के परिपालन तथा व्यक्ति के अभ्युदय के लिए सम्पूर्ण जीवन को चार कालखण्डों में विभाजित कर आश्रम धर्म की व्यवस्था की गई थी। ये चार खण्ड या विभाग है– (1) ब्रह्मचर्य (2) गृहस्थ (3) वानप्रस्थ (4) सन्यास।

ब्रह्मचर्याश्रम

नर के लिए ब्रह्मचर्याश्रम की अवधि 25 से 48 वर्ष निश्चित है। इसका कारण 48 वर्ष तक शरीर की धातुओं में वृद्धि होना बताया गया है। (सुश्रृत, सूत्रस्थान, अध्याय 35)। नारी के लिए यह 16 से 24 वर्ष है। क्या स्त्रियेां में 24 वर्ष पश्चात ही धातुओं में वृद्धि होना रूक जाता है, यह चिकित्सा विज्ञान के लिए एक शोध का विषय हो सकता है। मनुस्मृति(2/177–180)में ब्रह्मचर्य में पुरूषों द्वारा स्त्रियों के दर्शन न करने का उल्लेख किया गया है,परन्तु स्त्रियों द्वारा पुरूषों के दर्शन न करने को शब्दों में व्यक्त ने करने के कारण कदाचित कालान्तर में इसका यह अर्थ निकाला जाने लगा कि नारी ही नर के लिए धर्म में बाधक हो सकती है तथा नर नारी के लिए नहीं।

गृहस्थाश्रम

इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में भी बाधक के रूप में जीवनसाथी के स्थान पर पत्नी शब्द का उपयोग किया गया है। (उदाहरणार्थ मनुस्मृति (4/242–3) में परमात्मा की प्राप्ति को नर का ध्येय बताया गया है। नारी का नहीं। इसी प्रकार आधुनिक काल तक अनुवादको ने इस परम्परा को बनाये रखा है और जहॉ नर शब्द मूल श्लोंक में ही न लिया गया हो, वहॉ भी नर का विशेषाधिकार गढ दिया गया तथा बाधक (जैसे काम) के स्थान पर नारी को दोषी करार दे दिया।

वानप्रस्थाश्रम

हालांकि यर्जुर्वेद (20-24) में इसके अन्तर्गत नर –नारी को कोई भेद दृष्टिगत नहीं होता तथा व्यक्ति को सम्बोधित किया गया है, मनुस्मृति(6/3) में निश्चित ही नर को केन्द्र में कर लिया गया है – ' सब ग्राम के आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थो का त्याग कर, पुत्रों के पास पत्नी को रख या अपने साथ ले कर वन में निवास करें '। इसके अतिरिक्त, आधुनिक व्याख्याकार द्वारा इसे पति तक सीमित करते हुये जोड दिया गया है कि जब सन्यास ग्रहण की इच्छा हो तो स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवें, फिर सन्यास ग्रहण करें। यह नारी की बढती परतन्त्रता व नर पर आश्रितता दर्शाता है।

सन्यासाश्रम

मनु (6/33) ने सन्यासाश्रम के लिए सभी संगों को छोडने की बात कही है तथापि आधुनिक विश्लेषक इसे न सिर्फ नर का आश्रम धर्म बना देता है बल्कि लिख देता है कि ' यदि स्त्री हो तो उससे भी अलग हो जाना चाहिये'। शायद ये स्त्रियों को अंतिम दो आश्रमों से छूट प्रदान करने की चेष्टा हो, परन्तु यह उन्हें निर्बल मानना ही हुआ।

नारी को साथ लेकर न चलने का ही शायद यह परिणाम हुआ है कि आज सिर्फ गृहस्थ आश्रम ही रह गया है, बाकी तीनों आश्रम करीब–करीब मिट गये हैं। पत्नी का सम्मान कायम न रहने के कारण विवाह सिर्फ शरीरों का मेल समझा जाने लगा है। इसका प्रभाव अन्य तीनों आश्रमों पर भी पडा है, क्योंकि इनका आधार गृहस्थ आश्रम ही है।

स्त्रियों के कर्म नियत कर दिये जाना

हालांकि वेदों ने पत्नी को पति की साथी (ऋग्वेद,10.85.3) तथा ' गृह' मानकर सम्मान दिया है। (ऋग्वेद 1.53.4), परन्तु कालान्तर में स्त्री मुख्यतया घर तक ही सीमित रह गई। यद्यपि यर्जुर्वेद (26.2) के अनुसार परमात्मा द्वारा वेदो का वाचन सभी जन के लिये बताया गया है–

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
बृह्मराजन्याभ्या शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।

तथा श्रोतसूत्रादि में भी लिखा है–' इमं मंत्र पत्नी पठेत' तथापि, स्मृत्यादि ने अस्वच्छता का हवाला देते हुये नारी को, शूद्रो की तरह वेदों के अध्ययन के अधिकार से वंचित कर दिया। यहॉ तक कि कई आधुनिक विचारकों ने भी इनकों सही ठहराते हुये कह दिया कि नर की अपेक्षा स्त्रियेां में जिन प्रकृति–प्रदत गुणों की प्रधानता है, उन्हीं के अनुरूप उनके लिए कर्म नियम थे। उन्हें ध्यान देना चाहिये। वर्तमान में महिलाएँ प्रत्येक क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य करके इस तर्क को गलत साबित कर रही है।

कन्या की स्थिति में गिरावट

स्त्री के लिए गृह कार्य नियत कर दिये जाने के कारण उनकी शिक्षा का रूझान भी इस ओर हो गया। रामायण व महाभारत काल तक आते जाते पतिव्रत धर्म, अन्य पारिवारिको के साथ क्या सम्बन्ध होने चाहिए, चित्रकला, संगीत, नृत्य उनकी शिक्षा के अनिवार्य अंग हो गये। नारियों को निर्बल मानकर, स्मृतियों में जीवन–पर्यन्त उन्हें पिता, पति व पुत्र के संरक्षण में रखे जाने का प्रावधान किया गया। इस तरह उनकी वीरता को निरूत्साहित किया गया। पुत्रोत्पति पर जोर दिया जाता रहा हैं। माना जाता था कि पुत्रहीन को स्वर्ग प्राप्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त जब तक कोई व्यक्ति अपने पुत्र, अर्थात पोते को नहीं देख लेता, गृहस्थाश्रम से अवकाश ग्रहण करने का अधिकारी नहीं था इससे पुत्र पर

आश्रितता का आभास होता है। इसके अतिरिक्त रामायणकाल तक युवक–युवतियॉ विवाह के लिए माता–पिता की इच्छा पर पूर्णतया निर्भर हो गये। आज भी कई समाजों में परिवार की इज्जत बचाने के नाम पर अपनी मर्जी से विवाह करने वाली कन्याओं को अपमानित किया जाता है या मार डाला जाता है (ऑनर किलिंग)

समाज का नैतिक से आर्थिक होना

उत्तरोतर विकास के साथ समाज नैतिक से आर्थिक होता गया। श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण हुआ। धीरे–धीरे उत्पादकता का महत्व बढता गया। उत्पादकता का सम्पूर्ण आश्रय लेकर नर ने नारी को घर तक सीमित कर दिया और स्वयं उसका मालिक बन बैठा। स्त्री को मुख्यतः गृहणी बनने की ही शिक्षा दी जाती थी। अतः आर्थिक विकास की दौड में वह पिछड गई। '' विकास के विरोधाभास'' के सिद्धान्त के अनुरूप आर्थिक विकास के साथ उसकी सामाजिक–सांस्कृतिक प्रस्थिति में गिरावट दिखाई देती है। हालांकि घर की आय का व्यय वहीं करती थी, पर उसकी आर्थिक शक्ति इससे अधिक नहीं थी।

प्रदत, न कि अर्जित, शक्ति

वैदिक समाज में नारी को जो साम्राज्ञी कहा गया है, वह एक प्रदत्त नैतिक पद था न कि भौतिक रूप से अर्जित पद। उसे शिक्षा, विवाह, राजनीति आदि की जो स्वतन्त्रता मिली हुई थी, वह नैतिकता पर आधारित, पुरूष–प्रधान समाज द्वारा प्रदत्त थी। नर से अलग नारी का अपनी कोई आर्थिक शक्ति नहीं थी। अपने सम्मान व स्वतन्त्रता के लिए वह नर पर निर्भर थी। अतः जैसे–जैसे नैतिकता का ह्रास हुआ, यह स्वतन्त्रता परतंत्रता साबित हुई, अर्थात रूढिवादी तत्व नारी की स्वतन्त्रता को समाप्त करने में सफल हो गये। प0 जवाहरलाल नेहरू ने कहा था,'' यदि एक महिला आर्थिक रूप से स्वतंत्र व स्वयं आय का अर्जन करने वाली नहीं है, तो उसको अपने पति और/अथवा किसी अन्य पर निर्भर रहना पडेगा, और निर्भर व्यक्ति कभी स्वतंत्र नहीं हो सकते''। आज कार्यशीलरूप में महिलाएं सशक्त हो रही है। वैसे कृषि–आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था काफी हद तक महिलाओं पर निर्भर करती है। उन्हें भी अपनी भूमिका को रेखांकित करना होगा। परन्तु मात्र महिलाओं का आर्थिक स्वावलम्बन सामाजिक समस्याओं का अंत नहीं कर सकता, जैसा विकसित देशों की स्थिति से स्पष्ट होता है। आज जापान जैसे अतिविकसित देश में महिलाऍ अविवाहित रहने का निर्णय ले रही है, क्योंकि प्रतिभाशाली युवा कार्यशील स्त्रियों के माता बनने पर पति बच्चों की परवरिश में उनका बिल्कुल सहयोग नहीं कर रहे, और वे अपने आप को अकेला पा रही है। इसका कारण समाज की यह व्यापक धारणा है कि घर व बच्चेा की देखरेख में सहयोग का कार्य पति का नहीं है। निश्चय ही, मां के रूप में उन स्त्रियों के महत्व को पति व समाज द्वारा यदि समझा जाए, तो मानवजाति के सृजन के क्रम में इस समस्या के कारण आने वाले व्यवधान को रोका जा सकता है।

उच्च वर्ग आधारित

वैदिक साहित्य में उल्लेखित विदुषी कन्याऍं, दिव्य शक्तियें युक्त कन्याऍं, अथवा वीर नारियॉ उच्च वर्ग से सम्बन्धित प्रतीत होती है। वैदिक मूल्यों में रूढिवादियों द्वारा परिर्वतन भी समाज के उच्च वर्गो के आदर्श व्यवहारों के अनुसार किए गए थे, जिन्होंने स्त्रियों की भूमिकाओं को केवल घरों तक सीमित कर दिया तथा अन्य गतिविधियों में उसकी स्वतंत्रता छिनने लगी। रामायणकाल में सीता भी एक पतिव्रता गृहणी ही थी। रामायण के निम्न प्रसंग से पता चलता है कि साधारण परिवार की गृहणियों को पर्याप्त सम्मान प्राप्त नहीं था। श्रीराम ने रावण विजय के बाद सीताजी के गौरव के प्रतिकूल कुछ कह दिये तो उन्होने मर्यादा का ध्यान दिलाते हुये कहा–

त्वया तु नरशार्दुल कोधमवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरूस्कृतम्।।

अर्थात हे नरशार्दुल ! तुमने तो ओछे मनुष्यों की भॉति क्रोध के वशवर्ती हो साधारण स्त्रियों की तरह मुझको भी समझ लिया।

धीरे–धीरे निम्न वर्ग भी उच्च वर्ग के मानको को अपनाने लगे तथा नारियों को घरों तक सीमित कर दिया।

वैधानिक मान्यता का अभाव

समाज में किसी भी वर्ग की स्वतंत्रता तक तब एक पुराकथा रहती है, जब तक उसे कानून का संरक्षण प्राप्त नहीं हो जाता। वैदिक काल में गृहस्वामिनी नैतिक रूप से ही आय–व्यय की अधिकारिणी थी वैधानिक रूप से नहीं। विदुषी महिलाओं को भी राज्य द्वारा उच्च वैतनिक पद दिये जाने का उल्लेख साधारणतया नहीं दिखाई देता है। धर्मशास्त्रियों आदि का स्त्रियों की स्वतंत्रता निर्धारण में प्रभुत्व इसी कारण बढता गया। वेद व महाभारत की भाषा किसी समय लोकभाषा थी। पुरोहित वर्ग ने उसे संस्कृत बनाया और वेदवाणी पर अपना अधिकार जमा लिया। यह व्यवस्था कर दी कि शूद्र और स्त्रियॉं प्राकृत बोले, संस्कृत न बोले। देश की आजादी के बाद तक उनका प्रभुत्व समाज पर बना रहा। यहॉ यह बताना प्रासंगिक होगा कि भक्ति आन्दोलन ने भी शूद्रो के उत्थान का तो रास्ता दिखाया, उन्होंने नारी के प्रति निन्दात्मक दृष्टिकोण ही प्रकट किया। 19वी व 20 शताब्दी के सुधारकों आदि ने नारी उत्थान के कई कार्य किये व उन्हें महत्वपूर्ण कानूनी हक दिलवाए। परन्तु उन्होंने भी पितृसत्रात्मक व्यवस्था के अनुरूप नर नारी के बीच पूरकता तथा नारियों की गृहणी के रूप में ही जागरूकता पर जोर दिया। उन्होंने परिवार, समाज तथा राष्ट्र के हित को ध्यान में रखने के लिए आदर्श नारी से त्याग की मूर्ति, सहनशील तथा आश्रित बनने की अपेक्षा की। आज भी,यद्यपि अलग होने पर गृहणी पत्नी द्वारा भरण–पोषण की वैधानिक रूप से अधिकारिणी है, पर साथ रहते हुये यदि पति पत्नी बच्चों का भरण–पोषण न करे और घर में व्यय करने के लिए अपनी आय न दे, तो उन्हें यह हक दिलानें का कानूनी प्रावधान नहीं है। अधिकांश कार्यशील महिलाओं के पति भी यह सुनिष्चित करना चाहते है कि पत्नी की आय पूरी खर्च हो गई है तभी वे अपनी आय दे। वैदिक काल से ही अधिसंख्य महिलाऍं आजीविका अर्जन के लिए कुटुम्ब के प्रयासों में

हाथ बॅटाती है, और जब वे ऐसा नहीं करती, तब भी वह गृह–संचालन में तो वे सारें घरेलू दायित्वों का वहन करते हुये अपने–अपने पतियों को इस बात के लिए स्वतंत्र रखती है कि वे अपना कारोबार कर सके। इनके इन प्रयासों के आर्थिक मूल्यों को कानून में स्वीकार नहीं किया जाता। इसलिए ये स्त्रियॉ आर्थिक रूप से अपने पति पर आश्रित रहती है।

स्वयं स्त्रियों की नकारात्मक भूमिका

नारी में सेवा और समर्पण भाव स्वाभाविक रूप से होता है। विवेक के अभाव में उसे लाचारी और मजबूरी समझा जाने लगा। नारी के सम्बन्ध में पुरूष –वर्ग ही नही,स्वयं वह अपने आप का दीन, मजबूर और लाचार मानने लगी। सीता स्त्रियों के लिए आदर्श बताई गई। उनके द्वारा विनम्रता व कृतज्ञतावश इतना कुछ देने वाले पति की अपने आप को दासी बतानें को भी स्त्री को दासी बनाने के उपयोग में ले लिया गया। परिवार की आय में योगदान देने के उपरांत भी पत्नी को भोग की वस्तु व नौकरानी मानने की मानसिकता अभी भी विद्यमान है। पराश्रित महिलाओं में आत्मविश्वास की अधिक कमी हेाती हैं, अतः वे अपने अधिकारों की मांगॅ जोर देकर नहीं कर पाती। नारियों को अपने अस्तित्व को मानव के रूप में पहचानकर, बाहरी कार्यो के प्रति झिझक दूर कर आत्मनिर्भर बनने की आवश्यकता है।

नारी की नकारात्मक भूमिका का दूसरा पहलू यह भी है कि स्त्री स्वयं स्त्री की दुश्मन होकर, पुत्र संतान की चाह में, पुत्री को जन्मते ही या आजकल जन्मने से पहले ही समाप्त करने के लिए तैयार हो जाती है। ये उसकी सामाजिक मजबूरी है या आवश्यकता, यह विचारणीय प्रश्न है। दरअसल, पितृप्रधान व्यवस्था को पीढी दर पीढी आगे बढाते रहने में मुख्य भूमिका नारी की ही है। नर से अधिक नारी पितृसत्तात्मक आदर्शो पर चलती है, चाहे इसके कारण उसके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पडता हो।

कहते है, कपडे हमेशा सामने वाले की पसंद के पहनने चाहिये, न कि अपनी रूचि के, क्योंकि हमारें परिधान आदि से ही सामने वाला व्यक्ति हमारें बारें में अपनी धारणा बनाता है। वैदिक काल के बाद निरंतर स्त्रियों द्वारा अधिकाधिक चटख रंगो के भडकीले व अंग प्रदर्शित करने वाले कपडे व भव्य जेवर पहने जाते रहे। कदाचित इससे उनकी छवि भोग की वस्तु की बन गई हो। नारी को नर की माता, उसकी निर्मात्री और उसकी समाज में नेत्री का गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने के लिए स्वयं अपने आप को आंतरिक व बाह्य रूप में गौरव प्रदान करना होगा।

निष्कर्ष व सुझाव

संस्कृत वाड.मय के उपर्युक्त विवेचन से प्रतीत हेाता है कि वैदिककालीन मानव के हृदय में नारी के प्रति भेदभाव अंशमात्र भी नहीं था। नर–नारी के एकत्व की धारणा नर को वस्तुतः नारी बताती है और आधुनिक, तथाकथित सभ्य व सुसंस्कृत समाज के पूरकता और समानता के विवाद को ज्ञान की दृष्टि से बहुत पीछे छोड देती है। यह एक आदर्श समाज की ओर हमें ले जाती है, जहॉ सब मनुष्य ही नही, सब जीव एक है तथा परमात्मा की तरह अंदर से अमृतस्वरूप हे। यथार्थ में सम्पूर्ण, वैदिक समाज ने अपने आचरण में देवत्व दिखाते हुये एक दूसरें को पूर्ण सम्मान, सहयोग व अवसर प्रदान किये, परतंत्रता तो दूर की चीज है। यदि कहीं तुलना की बात हुई है, तो नारी को नर से श्रेष्ट बताया है। उसकी मातृत्वशक्ति की विशिष्टता के लिए प्रत्येक स्त्री को अतुल्य सम्मान दिया है, उसे सम्पूर्ण सृष्टि को धारण करने वाली और अन्न प्रदान करने वाली पृथ्वी का मूर्तरूप मान उसकी पूजा की है। जहॉ बालिका के रूप में नारी कल्याण देने वाली मानी गई है, वधु के रूप में साम्राज्ञी और पत्नी के रूप में साथी, सलाहकार एवं गृहस्वामिनी के रूप में पदस्थापित की गई है। महिलाएं स्वयं भी गृहणी होने के साथ–साथ शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय रहती व वीरता दिखाती। समाज पूर्णतः नैतिकता पर आधारित था। इस युग को न केवल भारतीय महिलाओ के लिए, वरन पूरी मानवजाति के लिए स्वर्णिम युग कहना कोई अतिश्योक्ति न होगी।

परन्तु वैदिक समाज कदाचित आंतरजनित रूढिवादी शक्तियों की ओर से होने वाले आक्रमण से अनभिज्ञ था। पाष्च्यात समाज में नर–नारी एकत्व की धारणा का कठिन होने के कारण आमजन में नहीं रच–बस पाना, परिणामतः मातृत्वशक्ति के सम्मान में कमी होना, पितृप्रधानता बढकर नर प्रधानता बन जाना, पुरूषार्थ–चतुष्टय व आश्रम–धर्म व्यवस्था का नर –केन्द्रित हो जाना, स्त्रियों के कर्म तथा उनकी शिक्षा नियत कर उन्हें घर तक सीमित कर दिया जाना, पुत्र पर आश्रितता बढ जाना, आदि दिखाई देते है। इन सभी का प्रभाव नारी की स्वतंत्रता व अधिकार छिन जाने के रूप में परिलक्षित हुआ। कुछ अन्य कारण भी इस स्थिति के लिए उत्तरदायी प्रतीत होते है। इनमें प्रमुख है– विकास के साथ समाज का नैतिक से आर्थिक हो जाना, स्त्रियों की आर्थिक शक्ति का न होना, नारी की स्वतंत्रता दूसरों द्वारा प्रदत्त होना, उच्च–वर्ग पर आधारित अधिकार व नियम, राज्य की उचित नीतियों का अभाव, नियमों को कानूनी मान्यता का अभाव दिया आदि। इसके अतिरिक्त, स्त्री का स्वभाव से सेवाभावी, त्यागी, सहनशील, विनम्र, कृतज्ञ व अहिंसक होना उसकी लाचारी, दीनता, निर्बलता व हीनता मानी जाने लगी। घर तक ही सीमित रहने व पराश्रितता के कारण वह भी इससे सहमत हो गई।

नारी की स्वतंत्र स्थिति पुनः प्राप्त करने के लिए हमें वैदिक युग की अच्छाईयों की बढावा देना होगा तथा उन कारणों को दूर करना होगा जो आज तक इसमें रूकावट बन रहे है। वैदिक समाज की भांति पहले नर–नारी के भेद मिटाकर सिर्फ मनुष्य के रूप में सबके बारें में सोचना होगा। मातृत्व शक्ति का सारी मानव जाति को, अपनी निर्मात्री मानकर, सम्मान करना होगा और सभी को बच्चें की सुरक्षा व परवरिश में सहयोग करना होगा। रूढिवादी परम्पराओं के चलते, इसके लिए पिता की जिम्मेदारी सुनिश्चित करने वाला कानून बनाने की आवश्यकता है। गैर–मौद्रिक क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले नारी के कार्यो–चाहे परिवार के व्यवसाय में भागीदारी हो या गृहणी के कार्य, को आर्थिक रूप प्रदान करना होगा।

कानूनी हक के रूप में यह उसे देना होगा चाहें वह पति के साथ रहे या किन्हीं कारणों से दोनों को अलग–अलग रहना पडें। पत्नी को साथी, सलाहकार व गृहस्वामिनी की पदवी यदि उसे पुनः सम्मान दे दी जाए, तो वैवाहिक रिश्ते वैदिक युग की भॉति आदर्श व पवित्र हो जायेंगे। महात्मा गॉधी ने कहा था कि '' आजकल जीवन की हर बात कामवृति से निर्धारित और नियंत्रित होती है। इससे नारी की स्थिति सुधर नहीं सकती। .....ज्यादातर तो स्त्री का समय अपने पति के अहंकारमूलक सुख की और अपने मिथ्याभिमान की पूर्ति में खर्च होता है। मेरे ख्याल से स्त्रियों की यह गुलामी हमारें जंगलीपन की निशानी है''। स्त्रियों को कुछ कर दिखानें का जज्बा अपने अंदर लाना चाहिये। सारी मानवजाति को अपने बच्चें की भॉति प्रेम देना चाहिये। अपने आप को लाचार व शारीरिक रूप से कमजोर समझना छोड देना चाहिए। साथ ही स्त्रियों को स्वतंत्र रीति से विचार करना सीखना चाहिए। सीता भी राम की हर बात का समर्थन नही करती थी,बल्कि सही गलत का निर्णय स्वविवेक से करती थी। जब राम ने वन न जाने के लिए सीता को मनाने के लिए कहा कि मेरी बात मानो, पति की बात मानना तुम्हारा धर्म है, तब सीता ने कहा –

अनुषिष्टास्मि माता च पिता च विविधाश्रयम् ।
नास्मि सम्प्रतिवक्तव्या वर्तित्वयं यथा मया।।

अर्थात स्त्री को अपने पति से किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, यह बात मुझे मेरे मात–पिता ने अनेक प्रकार से समझा दी है। अतः इस विषय में मुझे अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

इसी तरह, प्राचीन परम्पराओं को भी बुद्धि की कसौटी पर परखकर देखनी चाहिए। यदि वे इस कसौटी पर खरी निकलें, तभी उन्हें अपनाना चाहिएं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भटनागर, सुधा (1999) : ' पुरूषार्थ चतुष्टयः दार्शनिक अनुशीलन', विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली।*
2. *ब्रह्मवर्चस (स)(1998) :' पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़. मय–रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ,' अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।*
3. *बुल्के, कामिल (2004): 'रामकथा –,हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।*
4. *गैरोला, वाचस्पति (2004):' वैदिक साहित्य और संस्कृति', चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।*
5. *गोयल,सुनील (2003): ' भारतीय समाज में नारी' आर. बी.एस.ए., पब्लिशर्स, जयपुर।*
6. *गुप्ता, बीना (1998) : 'भक्ति काव्य में नारी की स्थिति', क्लासिक पब्लिकेशन्स, जयपुर।*
7. *मुखोपाध्याय,स्वप्ना (सं.) (2007): 'दि एनिग्मा ऑफ द केरला वूमेन : अ फेल्ड प्रोमिस ऑफ लिटरेसी,' सोषल साइंस प्रेस, नई दिल्ली।*
8. *मुसलगॉवकर, गजाजनशास्त्री, केशवशास्त्री मुसलगॉवकर, (वि.सं.2050):'' वैदिक साहित्य का इतिहास,' चौखम्भा संस्कृत संस्थान,वाराणसी।*
9. *इन्द्र,एम,ए.(1995) : ' प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति', मोतीलाल पब्लिशर्स, बनारस।*
10. *कुमारप्पा, भारततन (सं.) (1959): ' स्त्रियॉ और उनकी समस्याएँ,' गांधीजी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।*
11. *मैकडोनेल, ए,ए, (1984) :' वैदिक माइथोलोजी,' चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, अनुवादक–रामकुमार राय।*
12. *नाटाणी, वी.एन. (2007): ' कन्या भ्रूणहत्या और महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा,' बुक एनक्लेव,जयपुर।*
13. *राधाकृष्णन,एस (1956): 'रिलिजन एण्ड सोसायटी', ज्यॉज एलेन एण्ड अनविन लि.लंदन।*
14. *शर्मा, मंजू (2008): 'भारतीय समाज में महिलाओं का विकास,'राज पब्लिसिंग हाउस, जयपुर।*
15. *शर्मा, प्रज्ञा (2001): ' महिला विकास सशक्तिकरण', आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।*
16. *शर्मा, रामविलास (1999): 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश,' भारतीय संस्कृत और हिन्दी प्रकाशन, दिल्ली।*
17. *श्रीमद्भागवत–महापुराण. व दृप्, महर्षि वेदव्यास प्रणीत (वि.सं.2048), गीता प्रेस, गौरखपुर।*
18. *स्वामी दयानन्द सरस्वती, ' सत्यार्थप्रकाशः,' आर्य समाज मण्डल लिमिटेड, अजमेर।*